बिहार राज्य

बनाम

भारत संघ और एक अन्य

(State of Bihar

Vs.

Union of India and Another)

(19 सितम्बर, 1969)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० हिदायतुल्लाह, न्या० जे० सी० शाह, वी० रामस्वामी, जी० के० मित्तर और ए० एन० ग्रोवर)

भारत का संविधान, अनुच्छेद 131—प्राइवेट पक्षकार को क्या इस अनुच्छेद के अधीन किसी वाद में पक्षकार बनाया जा सकता है ? यह अनुच्छेद इसके खण्ड (क), (ख) और (ग) में उल्लिखित पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवाद का परिनिर्धारण करने के लिए उद्दिष्ट हैं—न्यायालय घोषणात्मक डिक्री मात्र ही दे सकता है।

बिहार राज्य ने अपनी गंडक परियोजना के लिए लोहे और इस्पात के सामान के अपूर्ण परिदान के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन इस न्यायालय में अनेक वाद फाइल किए। छः वादों में भारत संघ (प्रतिवादी संख्या 1) और हिन्दुस्तान स्टील लि० (प्रतिवादी संख्या 2) प्रतिवादी थे, तथा छः अन्य वादों में भारत संघ (प्रतिवादी संख्या 1) और इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लि० (प्रतिवादी संख्या 2) प्रतिवादी थे। सभी वादों में प्रार्थनाएं की गई थीं कि या तो भारत संघ के या द्वितीय प्रतिवादी के विरुद्ध विनिर्दिष्ट राशियों की डिक्रियां पारित कर दी जाएं। सभी वादों में एक ही जैसे प्रारम्भिक विवाद्यक विचारार्थ तैयार किए गए थे, अर्थात्—(1) क्या इस वाद का या के वाद-हेतुक संविधान के अनुच्छेद 131 की परिधि के अन्तर्गत आते हैं ? (2) क्या किसी राज्येतर पक्षकार अर्थात् प्रतिवादी सं० 2 को वाद में पक्षकार बना लिए जाने की बात को दृष्टि में रखते हुए यह वाद संविधान के अनुच्छेद 131 की परिधि के अन्तर्गत आता है ? (3) क्या प्रतिवादी संख्या 1 को नोटिस न दिए जाने के कारण यह वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के उपबंधों द्वारा वर्जित है।

अभिनिर्धारित—अनुच्छेद 131 में पक्षकारों का विनिर्देशन समावेशी किस्म का नहीं है। इस अनुच्छेद के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अभिव्यक्त शब्द किसी प्राइवेट नागरिक, किसी फर्म या निगम को विवादी के रूप में या तो अकेले या विवाद के पक्षकार

की कोटि में किसी राज्य के या भारत सरकार के साथ पेश होने की बात को अपवर्जित करते हैं। गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की तत्संबंधी धारा अर्थात् धारा 204 का विषय और संविधान की धारा 131 के पारित होने तक का विधायी इतिहास इस निष्कर्ष का समर्थन करता है कि जहां तक कि किसी विवाद के पक्षकारों का संबंध है, संविधान के निर्माताओं का निश्चय ही यह आशय था कि केवल भारत संघ के संघटक यूनिट और भारत सरकार ही या तो अकेले या किसी अन्य संघटक यूनिट के साथ संयुक्तत: एक पक्ष में अथवा दूसरे पक्ष में या भारत सरकार ही पक्षकार हो सकेंगे। अन्य प्रकार के संविवादों या विवादों के लिए संविधान में, अर्थात् अनुच्छेद 143, 257, 262 और 290 में विशेष उपबंध किया गया है। जिस विवाद में कोई प्राइवेट पक्षकार अन्तर्वलित है वह विवाद इस न्यायालय से भिन्न किसी ऐसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसे उस विषय में अधिकारिता प्राप्त हो।

दि युनाइटिड प्राविन्सेज बनाम **दि गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल** (The United Provinces *Vs.* The Governor General-in-Council), (1939) एफ० सी० आर० 124 और **सिरायकेला रियासत और कुछ अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** (The State of Seraikella and Others *Vs.* Union of India and Another), (1951) एस० सी० आर० 274 निर्दिष्ट किए गए।

संविधान के भाग 3 और भाग 4 में दी गई 'State' (राज्य) की परिवर्धित परिभाषा, संविधान के अनुच्छेद 131 को लागू नहीं होती है तथा संविधान के अनुच्छेद 131 के प्रयोजन के लिए हिन्दुस्तान स्टील लि० जैसी संस्था को "a State" (राज्य) नहीं माना जा सकता।

राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड बनाम **मोहन लाल** (Rajasthan State Electricity Board *Vs.* Mohan Lal), (1967) 3 एस० सी० आर० 377 से प्रभेद किया गया।

विवाद्यक संख्या 2 के बारे में उपर्युक्त निष्कर्ष को देखते हुए ये वाद संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन इस न्यायालय में दायर नहीं किए जा सकते हैं और वादपत्र लौटा दिए जाने चाहिए। इस कारण विवाद्यक संख्या 1 और 3 का विनिश्चय करना अनावश्यक था।

अनुच्छेद 131 यह विहित नहीं करता है कि किसी वाद में परिकल्पित विवाद को पूर्णरूपेण न्यायनिर्णीत करने के लिए या अन्य न्यायालयों की डिक्रियों की भांति सामान्य रीति में निष्पादनीय डिक्री के पारित किए जाने के लिए वह वाद उच्चतम न्यायालय में फाइल किया जाए। व्यथित पक्षकार के अधिकारों की घोषणा उस पक्षकार को दे देने के पश्चात् इस न्यायालय का अनुच्छेद 131 के अधीन कार्य समाप्त हो जाता है।

1969(9) eILR(PAT) SC 1

आरम्भिक सिविल अधिकारिता : 1969 के सं० 512 और 513, 574 और 575, 578 और 579, 581 और 582, 583 और 584, 587 और 588, 605 और 606, 609 और 610 तथा 1466 और 1467 वाले सिविल प्रकीर्ण पिटीशन।

(1967 के सं० 3 और 1968 के सं० 1 और 3 से 9 वाले मूल वादों के विषय में वादपत्रों की नामंजूरी और वादों की सुनवाई को रोकने के लिए प्रतिवादी सं० 1 द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन आवेदन)

प्रतिवादी सं० 1 की ओर से (सभी वादों में)	श्री निरेन डे, भारत का महान्यायवादी, डा० बी० ए० सैयद मुहम्मद और श्री बी० डी० शर्मा
प्रतिवादी सं० 2 की ओर से (1968 के सं० 3 से 8 वाले वादों में)	श्री डी० एन० गुप्ता
प्रतिवादी सं० 2 की ओर से (1967 के सं० 3 वाले और 1968 के सं० 1 से 9 वाले वादों में)	श्री डी० एन० मुखर्जी
वादी की ओर से (1967 के सं० 3 और 1968 के सं० 1, 3, 5 और 6 वाले वादों में)	श्री डी० पी० सिंह
वादी की ओर से (1968 के सं० 4 और 7 वाले वादों में)	श्री डी० गोबर्धन
वादी की ओर (1968 के सं० 8 वाले वाद में)	श्री यू० पी० सिंह
वादी की ओर से (1968 के सं० 9 वाले वाद में)	श्री आर० सी० प्रसाद

न्यायालय का आदेश न्यायाधिपति जी० के० मित्तर ने दिया।

न्यायाधिपति मित्तर—

आवेदनों के इस समूह को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग का उद्देश्य इस न्यायालय में फाइल किए गए नौ वादों में वाद-पत्रों को खारिज कराना है और दूसरे वर्ग का उद्देश्य वादों की सुनवाई को रुकवाना है। ये सभी वाद एक ही पैटर्न के हैं जिनमें से प्रत्येक में बिहार राज्य वादी के रूप में है। इन सब वादों में भारत संघ प्रथम प्रतिवादी है, जब कि छः वादों में तो हिन्दुस्तान स्टील लि० द्वितीय प्रतिवादी

है और अन्य तीन वादों में इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड द्वितीय प्रतिवादी है। सभी वादों में वाद-हेतुक का स्वरूप एक सा ही है। संक्षेप में, वादी का पक्षकथन सभी वादों में यह है कि "दोनों प्रतिवादियों के सेवकों की उपेक्षा या विमर्शतः किए गए कार्य के कारण, लोहे और इस्पात के उस सामान का न्यून परिदान किया गया था जो कि गंडक प्रोजेक्ट के सन्निर्माण कार्य के सम्बन्ध में, बिहार राज्य में विभिन्न स्थलों के लिए वादी द्वारा मंगवाया गया था।" चूंकि प्रोजेक्ट स्थल पर भेजे जाने के लिए सभी मामलों में माल रेल द्वारा बुक किया गया था, अतः दोनों ही प्रतिवादियों को न्यून परिदान के लिए जिम्मेदार ठहराने का प्रयत्न किया गया है: प्रथम प्रतिवादी को तो रेलवे का स्वामी होने के नाते और दूसरे प्रतिवादी को सामान के परिदान के लिए बिहार राज्य के साथ संविदाधीन माल के परेषक के नाते। प्रत्येक मामले में, या तो प्रथम प्रतिवादी के विरुद्ध या "अनुकल्पतः द्वितीय प्रतिवादी के विरुद्ध" एक विनिर्दिष्ट धनराशि की डिक्री पारित की जाने के लिए प्रार्थना की गई है। सामान्यतः इसी प्रकार के सभी वाद भारत भर में निम्नतम अधिकारिता वाले न्यायालयों से लेकर आरम्भिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालयों तक विभिन्न न्यायालयों में संस्थित किए जाते हैं। विभिन्न न्यायालयों के दिन-प्रतिदिन फाइल किए जाने वाले अन्य वादों की तुलना में इस प्रकार के वादों का एकमात्र प्रभेदक लक्षण यह है कि ऐसे प्रत्येक मामले में राज्य ही वादी होता है। इस प्रकार के सभी वादों में, जो कि इस न्यायालय से भिन्न अन्य न्यायालयों में फाइल किए जाते हैं, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन एक नोटिस का दिया जाना एक अत्यावश्यक पूर्वोपेक्षा है। इनमें से किसी भी मामले में ऐसा कोई नोटिस नहीं दिया गया है। उन तीन विवाद्यकों के विचारण के लिए आवेदन दिए गये जिन्हें प्रारम्भिक विवाद्यकों के रूप में उठाने का प्रयत्न किया गया था। वे इस प्रकार हैं:—

(1) क्या इस वाद में अभिकथित वाद-हेतुक संविधान के अनुच्छेद 131 की परिधि में आता है/आते हैं?

(2) क्या एक राज्येतर पक्षकार अर्थात् प्रतिवादी सं० 2 को वाद में का पक्षकार बना दिए जाने की बात को दृष्टि में रखते हुए, यह वाद संविधान की धारा 131 की परिधि में आता है?

(3) क्या प्रतिवादी संख्या 1 को नोटिस न दिए जाने के कारण यह वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के उपबंधों द्वारा वर्जित है?

इस न्यायालय के सामने प्रश्न यह है कि क्या इन मामलों में का विवाद उस अनुच्छेद (पाद-टिप्पण में उद्धृत) की परिधि के अन्तर्गत आता है? यह बात ध्यान देने

अनुच्छेद 131: इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए—

(क) भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच के, अथवा

योग्य है कि यह अनुच्छेद इसमें उल्लिखित पक्षकारों के बीच किसी विवाद में, इस न्यायालय को, अन्य सब न्यायालयों का अपवर्जन करते हुए, अधिकारिता प्रदान करता है। किन्तु एक अध्यारोही उपबंध यह भी है कि ऐसी अधिकारिता संविधान के उपबंधों के अध्यधीन होती है और हमारा ध्यान इनमें से कुछ उपबंधों की ओर दिलाया गया था जिनमें कि विनिर्दिष्ट विवादों का न्यायनिर्णयन एक बिल्कुल ही भिन्न रीति से करना होता है। अनुच्छेद 131 का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसमें भारत सरकार या किसी एक या अधिक राज्यों से भिन्न किसी पक्षकार का उल्लेख नहीं किया गया है जो कि विवादी के रूप में खड़ा किया जा सके। दूसरा प्रभेदकारी लक्षण यह है कि इस न्यायालय द्वारा विवादों का न्यायनिर्णयन ठीक उसी प्रकार किया जाना अपेक्षित नहीं है जिस प्रकार से कि पक्षकारों के अधिकारों की रक्षा करने और उसके आदेशों और विनिश्चयों के प्रवर्तन के लिए प्रसामान्यतया साधारण न्यायालयों से ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है। अनुच्छेद के ये शब्द कि "if and in so far as the dispute involves any question (whether of law or fact) on which the existence or extent of a legal right depends." [यदि और जहां तक उस विवाद में ऐसा कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है (चाहे तो विधि का चाहे तथ्य का) जिस पर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर है] उस अधिकारिता के प्रयोग पर लगे निर्बन्धन के शब्द हैं। ये शब्द यह बताते हैं कि विवाद विधिक अधिकारों के सम्बन्ध में होने चाहिए, न कि राजनीतिक स्वरूप के। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय का संबंध तो केवल विधि या तथ्य के ऐसे प्रश्नों पर अपना विनिश्चय देने से है जिन पर कि दावाकृत विधिक अधिकार

(ख) एक ओर भारत सरकार और कोई राज्य या राज्यों तथा दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्यों के बीच के, अथवा

(ग) दो या अधिक राज्यों के बीच के,

किसी विवाद में, यदि और जहां तक उस विवाद में ऐसा कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है (चाहे तो विधि का चाहे तथ्य का) जिस पर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर है तो और वहां तक, अन्य न्यायालयों का अपवर्जन करके, उच्चतम न्यायालय का आरम्भिक क्षेत्राधिकार होगा :

परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद पर न होगा जो किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचन-बन्ध, सनद या अन्य तत्सम लिखत से, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई या निष्पादित थी तथा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या जो उपबंध करती है कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार ऐसे विवाद पर न होगा, पैदा हुआ है।

का अस्तित्व या विस्तार निर्भर करता है। विवादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए मामलों में न्यायालय यदि एक बार अपना निष्कर्ष निकाल लेता है और उठाए गए तथ्यों या विधि की बातों पर अपना न्यायनिर्णय दे देता है तो अनुच्छेद 131 के अधीन इस न्यायालय का कार्य समाप्त हो जाता है। अनुच्छेद 131 यह विहित नहीं करता है कि किसी वाद में परिकल्पित विवाद को पूर्णरूपेण न्यायनिर्णीत करने के लिए या अन्य न्यायालयों की डिक्रियों की भांति सामान्य रीति से निष्पादनीय डिक्री के पारित करने के लिए वह वाद उच्चतम न्यायालय में फाइल किया जाए। व्यथित व्यक्ति के लिए इस बात की छूट प्राप्त है कि वह सुसंगत तथ्यों के पूर्ण विवरण सहित एक पिटीशन इस न्यायालय को प्रस्तुत करे तथा उसमें अन्य विवादियों के मुकाबले अपने अधिकारों की घोषणा के लिए प्रार्थना करे। एक बार यदि ऐसा कर दिया जाता है तो अनुच्छेद 131 के अधीन इस न्यायालय का कार्य समाप्त हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के निर्माताओं ने इस सम्भावना को अनुध्यात नहीं किया है जिसमें कि अनुच्छेद 131 के अधीन इस न्यायालय द्वारा किए गए न्यायनिर्णय का कोई पक्षकार, की गई घोषणा का अनुपालन नहीं करे। हमारी विधि में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें कि न्यायालय से किसी करार के पक्षकारों के अधिकारों का न्यायनिर्णय करने के लिए अथवा बिना डिक्री पारित किए, ऐसे अधिकारों के आधार पर एक पंचाट मात्र ही देने के लिए कहा जाए। भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 33 ऐसे ही प्रश्न से संबंधित है। इसके अतिरिक्त, किसी वाद में डिक्री के अन्तर्गत भी न्यायालय द्वारा किए गए सभी न्यायनिर्णयों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे निष्पादन के रूप में प्रवर्तनीय हों। स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट, 1877 की धारा 42, जो कि अब नये अधिनियम की धारा 34 द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई है, किसी ऐसे व्यक्ति को जो किसी विधिक हैसियत, के लिए या किसी सम्पत्ति के बारे में किसी अधिकार के लिए हकदार हो, ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध जो ऐसी हैसियत या ऐसे अधिकार के हक का प्रत्याख्यान करता हो या प्रत्याख्यान करने में हितबद्ध हो, वाद, उसमें किसी अतिरिक्त अनुतोष की मांग किए बिना, संस्थित करने के लिए, उन परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए समर्थ बनाती है जो उस धारा में विहित हैं। किन्तु, हमें मामले के इस पहलू पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारा सम्बन्ध तो केवल यह पता लगाने से है कि क्या यह न्यायालय इन वादों को ग्रहण कर सकता है ?

इस अनुच्छेद के खण्ड (क), (ख) और (ग) उन पक्षकारों को विनिर्दिष्ट करते हैं जो कि इस न्यायालय के समक्ष विवादियों के रूप में उपसंजात हो सकते हैं। खण्ड (क) के अधीन भारत सरकार और एक या अधिक राज्य हैं; खण्ड (ख) के अधीन एक ओर भारत सरकार और एक या अधिक राज्य हैं और दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्य हैं और खण्ड (ग) के अधीन, विवाद में भारत सरकार के अन्तर्ग्रस्त हुए बिना दो या अधिक राज्य पक्षकार हो सकते हैं। पक्षकारों का विनिर्देशन समावेशी किस्म का नहीं है। खण्ड (क), (ख) और (ग) के अभिव्यक्त शब्द किसी प्राइवेट नागरिक, किसी फर्म या किसी निगम को या तो अकेले या विवाद के पक्षकार की कोटि में किसी राज्य या भारत सरकार

1969(9) eILR(PAT) SC

के साथ विवादी के रूप में प्रस्तुत होने की बात को अपवर्जित करते हैं। इस तजवीज की भी कोई गुंजाइश नहीं है कि एक ओर किसी प्राइवेट नागरिक, किसी फर्म या किसी निगम ही को और दूसरी ओर भारत सरकार सहित एक या अधिक राज्यों को पक्षकार के रूप में खड़ा किया जा सकता है। और न ही इस अनुच्छेद में ऐसी कोई बात है जो कि किसी प्राइवेट पक्षकार द्वारा या उसके विरुद्ध किसी राज्य या भारत सरकार के साथ संयुक्ततः या अनुकल्पतः किसी राज्य या भारत सरकार के साथ दावा किए जाने का संकेत करती हो। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के निर्माताओं ने किसी ऐसे विवाद की बाबत जिसमें कोई प्राइवेट नागरिक या कोई फर्म या कोई निगम किसी भी रूप में अन्तर्ग्रस्त हो, यह अनुध्यात नहीं किया होगा कि वह अनुच्छेद 131 द्वारा प्रदत्त अनन्य आरम्भिक अधिकारिता के अधीन इस न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए एक उपयुक्त विषय है।

हमारे संविधान के अनेक उपबन्धों की भांति, इस अनुच्छेद का भी अग्ररूप गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 में विद्यमान था। उस अधिनियम की धारा 204 में भारत की फेडरल कोर्ट को आरम्भिक अधिकारिता के प्रदान किए जाने के लिए उपबन्ध था। वह धारा इस प्रकार है—

> *"(1) Subject to the provisions of this Act, the Federal Court shall, to the exclusion of any other court, have an original jurisdiction in any dispute between any two or more of the following parties, that is to say, the Federation, any of the Provinces or any of the Federal States, if and in so far as the dispute involves any question (whether of law or fact) on which the existence or extent of a legal right depends:
>
> Provided that the said jurisdiction shall not extend to—

---

*हिन्दी में यह इस प्रकार हो सकता है—

> "(1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, निम्नलिखित पक्षकारों, अर्थात् फेडरेशन, प्रान्तों में से किसी प्रान्त या फेडरल राज्यों में से किसी राज्य में से किन्हीं दो या अधिक के बीच किसी विवाद में, यदि और जहां तक उस विवाद में कोई ऐसा प्रश्न (चाहे तो विधि का चाहे तथ्य का) अन्तर्वलित है जिस पर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर है, तो और वहां तक किसी अन्य न्यायालय का अपवर्जन करके फेडरल न्यायालय को आरम्भिक अधिकारिता होगी :
>
> परन्तु उक्त अधिकारिता का विस्तार निम्नलिखित पर नहीं होगा—

(a) a dispute to which a State is a party, unless the dispute—

(i) concerns the interpretation of this Act or of an Order-in-Council made thereunder, or the extent of the legislative or executive authority vested in the Federation by virtue of the Instrument of Accession of that State; or

(ii) arises under an agreement made under Part VI of this Act in relation to the administration in that state of a law of the Federal Legislature, or otherwise concerns some matter with respct to which the Federal Legislature has power to make laws for that State; or

(iii) arises under an agreement made after the establishment of the Federation, with the approval of His Majesty's Representative for the exercise of the functions of the Crown in its relations with Indian States between that State and the Federation or a

---

(क) ऐसा विवाद जिसमें कोई राज्य पक्षकार है, जब तक कि वह विवाद —

(i) इस अधिनियम या तदधीन किए गए किसी परिषदानुमत आदेश के निर्वचन से अथवा उस राज्य की संविलयन-लिखत के आधार पर फेडरेशन में निहित विधायी या कार्यपालक प्राधिकार के विस्तार से सम्बन्धित न हो; अथवा

(ii) उस राज्य में फेडरल विधानमण्डल की किसी विधि के प्रशासन के संबंध में, इस अधिनियम के भाग 4 के अधीन किए गए किसी करार के अधीन उद्भूत न हुआ हो अथवा किसी ऐसे विषय से अन्यथा संबंधित न हो जिसके सम्बन्ध में फेडरल विधानमण्डल को उस राज्य के लिए विधियां बनाने की शक्ति है; अथवा

(iii) फेडरेशन की स्थापना के उपरान्त किए गए किसी करार के अधीन उद्भूत न हुआ हो, जो कि भारतीय राज्यों के साथ सम्राट् के सम्बन्धों की बाबत उसके कृत्यों के प्रयोग के लिए महामहिम के प्रतिनिधि के अनुमोदन से, उस राज्य और फेडरेशन या प्रान्त के बीच किया गया है, और जो ऐसा करार है जो कि अभिव्यक्त

1969(9) eILR(PAT) SC 1

Province, being an agreement which expressly provides that the said jurisdiction shall extend to such a dispute;

(b) a dispute arising under any agreement which expressly provides that the said jurisdiction shall not extend to such a dispute.

(2) The Federal Court in the exercise of its original jurisdiction shall not pronounce any judgment other than a declaratory judgment."

इस धारा के परन्तुक के खण्ड (ए) में विवादों के उन प्रवर्गों को परिभाषित किया गया है जो कि फेडरल न्यायालय के समक्ष उठाए जा सकते थे और खण्ड (बी) में पक्षकारों को, ऐसी अधिकारिता का उस करार में जिसके सम्बन्ध में विवाद खड़ा हुआ हो, अपवर्जन करने के हेतु उपबन्ध करने के लिए, अनुज्ञात किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि खण्ड (ए) के उपखण्ड (i) के अधीन विवाद की व्याप्ति गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट या परिषद-आदेश के निर्वचन तक या फेडरेशन में निहित विधायी या कार्यपालक प्राधिकार के विस्तार तक सीमित कर दी गई थी और उपखण्ड (ii) के अधीन विवाद का सम्बन्ध किसी राज्य में फेडरल विधानमण्डल की विधि के प्रशासन से सम्बन्धित होना चाहिए था या उक्त विधानमण्डल की विधायी सक्षमता से सम्बन्धित किसी बात से अन्यथा सम्पृक्त होना चाहिए था। उपखण्ड (iii) के अन्तर्गत यह विवाद केवल ऐसा विवाद हो सकता था जो ऐसे करार के अधीन उत्पन्न हुआ है जो कि फेडरेशन की स्थापना के पश्चात् राज्य और फेडरेशन के या किसी प्रान्त के बीच, उसमें विनिर्दिष्ट शर्त के अध्यधीन किया गया हो। उस प्रकार का विवाद जो कि मामलों की इस श्रृंखला में उठाया गया है, गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 204 की पहुंच के बाहर है।

यहां धारा 204 के उदगम के बारे में उल्लेख कर देना असंगत नहीं होगा। भारतीय सांविधानिक सुधार के बारे में संयुक्त समिति (Joint Committee on

---

रूप से यह उपबंध करता है कि उक्त अधिकारिता का विस्तार ऐसे विवाद तक होगा;

(ख) किसी ऐसे करार के अधीन उद्भूत होने वाला विवाद जो कि अभिव्यक्त रूप से यह उपबंधित करता है कि उक्त अधिकारिता का विस्तार ऐसे विवाद पर नहीं होगा।

(2) फेडरल न्यायालय, अपनी आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में किसी घोषणात्मक निर्णय से भिन्न कोई निर्णय नहीं सुनाएगा।"

Indian Constitutional Reform) के 1933-34 के सत्र के कार्य-विवरण के खण्ड 1, भाग 2 का पैरा 309 इस प्रकार है—

> *"A Federal Court is an essential element in a Federal Constitution. It is at once the interpreter and guardian of the Constitution and a tribunal for the determination of dispute between the constituent units of the Federation. The establishment of a Federal Court is part of the White Paper Scheme, and we approve generally the proposals with regard to it. We have, however certain comments to make upon them which we set out below."

भारतीय सांविधानिक सुधार के बारे में संयुक्त समिति के 1933-34 के सत्र की रिपोर्ट के खण्ड 1, भाग 1 में दो पैरे ऐसे हैं जिनका इस विषय से संबंध है। पैरा 322 ऊपर उद्धृत पैरा 309 की प्रतिकृति है। पैरा 324 इस प्रकार था—

> **"324. It is proposed that the Federal Court shall have an original jurisdiction in—
>
> (i) any matter involving the interpretation of the Constitution Act or the determination of any rights or obligations arising thereunder, where the parties to the dispute are (a) the Federation and either a Province or a State, or (b) two Provinces or two States, or a Province and a State;

---

*हिन्दी में यह इस प्रकार हो सकता है—

"फेडरल न्यायालय फेडरल संविधान का एक अत्यावश्यक अवयव है। यह साथ ही संविधान का संरक्षक एवं निर्वचनकर्ता भी होता है और फेडरेशन के संघटकों के बीच विवादों के अवधारण के लिए अधिकरण भी होता है। फेडरल न्यायालय की स्थापना ह्वाइट पेपर स्कीम का एक भाग है और हम इससे संबंधित प्रस्थापनाओं को साधारणतया अनुमोदित करते हैं। किन्तु हमें उन पर कुछ टिप्पणियां भी करनी हैं जो कि नीचे दी जाती हैं।"

**"324. यह प्रस्थापना की जाती है कि फेडरल न्यायालय को निम्नलिखित में आरम्भिक अधिकारिता प्राप्त होगी—

(i) संविधान अधिनियम के निर्वचन या तदधीन उद्भूत होने वाले किन्हीं अधिकारों या बाध्यताओं के अवधारण को अन्तर्वलित करने वाले किसी मामले में, जहां कि विवाद के पक्षकार (क) फेडरेशन और या तो कोई प्रान्त या कोई राज्य हो, अथवा (ख) दो प्रान्त या दो राज्य या कोई प्रान्त और कोई राज्य हो;

(ii) any matter involving the interpretation of, or arising under, any agreement entered into after the commencement of the Constitution Act between the Federation and a Federal Unit or between Federal Units, unless the agreement otherwise provides.

This jurisdiction is to be an exclusive one, and in our opinion rightly so, since it would be altogether inappropriate if proceedings could be taken by one Unit of the Federation against another in the Courts of either of them. For that reason we think that, where the parties are Units of the Federation or the Federation itself, the jurisdiction ought to include not only the interpretation of the Constitution Act, but also the interpretation of Federal Laws, by which we meant any laws enacted by the Federal Legislature."

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 के निर्माताओं ने यह सोचा था कि फेडरेशन के संघटक यूनिटों के बीच विवादों का अवधारण करने के लिए अधिकरण फेडरल न्यायालय ही होना चाहिए और इसने उस विवाद के यथार्थ स्वरूप को अधिकथित करने का प्रयास किया है जिनकी परीक्षा और विनिश्चय करने के लिए उस न्यायालय से अपेक्षा की जा सकेगी ।

सप्रू समिति की सांवैधानिक प्रस्थापनाओं से प्रतीत होता है कि उक्त समिति की

(ii) संविधान अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् फेडरेशन और किसी फेडरल यूनिट के या फेडरल यूनिटों के बीच किए गए किसी करार के निर्वचन को अन्तर्वलित करने वाले या उसके अधीन उद्भूत होने वाले किसी मामले में, जब तक कि करार में अन्यथा उपबंध न हो ।

यह अधिकारिता अनन्य अधिकारिता होगी और हमारी राय में ऐसा ठीक ही है क्योंकि यह बात बिल्कुल ही अनुपयुक्त होगी यदि फेडरेशन का एक यूनिट दूसरे यूनिट के विरुद्ध उनमें से किसी एक के न्यायालयों में कार्यवाही करें । इसी कारण, हमारा विचार है कि जहां फेडरेशन के यूनिट या फेडरेशन ही पक्षकार हों, वहां संविधान अधिनियम का केवल निर्वचन ही अधिकारिता में सम्मिलित नहीं होना चाहिए, अपितु फेडरल विधियों का निर्वचन भी उसमें सम्मिलित होना चाहिए, जिनसे हमारा आशय फेडरल विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित की गई विधियों से है ।"

1969(9) eILR(PAT) SC 1

उक्त रिपोर्ट और उक्त कार्य-विवरण उस समय उनके ध्यान में था जब कि उन्होंने भारत में फेडरल न्यायालय की स्थिति को मजबूत बनाने और आरम्भिक शाखा तथा अपील शाखा दोनों ही ओर इसकी अधिकारिता को विस्तारित किए जाने का समर्थन किया, किन्तु साथ ही, उन्होंने बलपूर्वक यह भी कहा कि इसे "संविधान के निर्वचनकर्ता और संरक्षक के रूप में और फेडरेशन के संघटक यूनिटों के बीच विवादों का अवधारण करने के लिए अधिकरण के रूप में कार्य करना चाहिए।"

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 204 के अधीन फेडरल न्यायालय की अधिकारिता घोषणात्मक निर्णय के सुनाए जाने तक ही समिति थी।

संविधान सभा द्वारा तैयार किए गए भारत के प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 109 भी संविधान के, जिस रूप में कि वह सन् 1950 में प्रवृत्त हुआ, अनुच्छेद 131 के ही समान शब्दों में था। भाग 'ख' के राज्यों के उत्सादन और तद्द्वारा अपेक्षित परिवर्तनों के कारण, सन् 1956 में सातवें संशोधन के परिणामस्वरूप, मूल अनुच्छेद के परन्तुक को नए परन्तुक से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस सम्बन्ध में न्यायालय में संविधान सभा के कार्यवृत्त के खण्ड 4, तारीख 13 जुलाई, 1947 से 21 जुलाई, 1947 के प्रति भी निर्देश किया गया। किन्तु उनसे कोई अतिरिक्त जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

जहां तक भारतीय सांविधानिक सुधार के बारे में संयुक्त समिति के कार्य विवरण और उसके बारे में समिति की रिपोर्ट का सम्बन्ध है, वे यह स्पष्ट करती हैं कि फेडरल न्यायालय को अनन्य आरम्भिक अधिकारिता प्रदत्त करने का उद्देश्य यह था कि फेडरेशन और फेडरेशन के संघटक यूनिटों के रूप में प्रान्तों के बीच विनिर्दिष्ट प्रकार के विवादों का निर्णय करना यूनिट विशेष के न्यायालयों के हाथ में नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि उनका न्यायनिर्णय देश के केवल उच्चतम न्यायाधिकरण द्वारा ही किया जाना चाहिए जो कि किसी एक संघटक यूनिट के प्रभाव से परे होगा।

यद्यपि गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 204 की भांति अनुच्छेद 131 उन विवादों के प्रविषय को परिभाषित नहीं करता है जिनके अवधारण के लिए इस न्यायालय से अपेक्षा की जा सकती है, और हम भी ऐसा करना आवश्यक नहीं समझते, तो भी इतना तो निश्चित ही है कि वैध अधिकार का प्रश्न जो कि विवाद का विषय है, संविधान और संघवाद (Federalism) के जिसकी कि यह प्रस्थापना करता है, संदर्भ में उठना ही चाहिए। किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जहां तक विवाद के पक्षकारों का संबंध है, संविधान के निर्माताओं का निश्चय ही यह आशय था कि केवल भारत संघ के संघटक यूनिट और भारत सरकार ही एक पक्ष में या दूसरे पक्ष में भारत सरकार या तो अकेले या किसी अन्य यूनिट के साथ संयुक्ततः पक्षकार के रूप में खड़े हो सकते हैं।

न तो भारत के फेडरल न्यायालय का और न इस न्यायालय का ही कोई ऐसा

1969(9) eILR(PAT) SC 1

विनिश्चय है जो हमारे समक्ष प्रस्तुत इस प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश डालता हो। न्यायालय में **दि यूनाइटिड प्राविन्सेज** बनाम **दि गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल**[1] के मामले के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें कि यूनाइटिड प्राविन्सेज ने गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल के विरुद्ध इस घोषणा के लिए वाद फाइल किया था कि कैन्टोनमेन्ट्स ऐक्ट, 1924 के कुछ उपबन्ध तत्समय के भारतीय विधानमण्डल के शक्तिबाह्य थे। यह दावा भी किया गया था कि यूनाइटिड प्राविन्सेज में छावनी क्षेत्रों के अन्दर किए गए अपराधों के लिए दाण्डिक न्यायालयों द्वारा अधिरोपित तथा वसूल किए गए सभी जुर्माने प्रान्तीय राजस्व खाते में जमा किए जाने चाहिएं और वादी 1924 से लेकर, छावनी निधियों में गलती से जमा की गई ऐसी सब राशियों को वसूल करने और समायोजित करने के हकदार हैं। सपरिषद् गवर्नर जनरल ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी कि यह विवाद ऐसा नहीं है जो कि फेडरल न्यायालय द्वारा न्याय हो। अधिकारिता के प्रश्न पर मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर का रुझान इस विचार की ओर नहीं था कि किसी भी दशा में वादी को उन घोषणाओं के लिए हकदार होना चाहिए जिनकी कि प्रारम्भ में उन्होंने सपरिषद् गवर्नर जनरल के विरुद्ध कार्यवाहियों में मांग की थी। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के अनुसार, "उनके लिए उचित तरीका यह था कि वे किसी छावनी बोर्ड विशेष के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करते, यद्यपि ऐसी कार्यवाही इस न्यायालय के समक्ष नहीं लाई जा सकती थी"। उनका मत यह था कि न्यायालय इस बात के लिए सक्षम था कि वह इस घोषणा के हेतु वाद ग्रहण करे कि "1924 के अधिनियम की धारा 106 शक्तिबाह्य थी", और यह भी कहा कि चूंकि पक्षकारों के बीच विवाद उस प्रान्त के इस प्राख्यान के विधिमान्यता पर निर्भर था कि विचाराधीन जुर्माने प्रान्तीय राजस्व खाते में जमा किए जाएं, न कि छावनी निधियों में; अतः विवाद में किसी वैध अधिकार के अस्तित्व का प्रश्न अन्तर्वलित था। उनके मतानुसार यह प्रश्न उन कार्यवाहियों में उठाया जा सकता था जिनमें कोई छावनी बोर्ड पक्षकार होता, किन्तु "सभी सम्बन्धितों के लिए यह सुविधाजनक था कि इसका निपटारा न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में ही कर दिया जाना चाहिए"।

इस संबंध में जिस एकमात्र भारतीय मामले का हवाला न्यायालय में दिया गया, वह था **सिरायकेला रियासत और कुछ अन्य** बनाम **भारत संघ तथा एक अन्य**[2] जिसमें न्यायाधिपति महाजन ने यह मत व्यक्त किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 गवर्नमेंट आफ इन्डिया ऐक्ट की धारा 204 के अधीन फेडरल न्यायालय में संस्थित वादों को प्रभावित नहीं करेगी।

हमारा ध्यान अमरीकी संविधान के कुछ उपबंधों और आस्ट्रेलिया के संविधान अधिनियम के कुछ उपबंधों तथा अनेकों ऐसे विनिश्चयों की ओर आकृष्ट किया गया जिनका

---

(1) 1939 एफ० सी० आर० 124.
(2) 1951 एस० सी० आर० (474).

उन उपबंधों के निर्वचन से संबंध था जो कि लगभग अनुच्छेद 131 जैसे ही हैं। किन्तु चूंकि समरूपता केवल सीमित ही है, अतः न तो निर्दिष्ट उपबंधों और न उन विनिश्चयों की ही, जिनकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया, परीक्षा करने का हमारा विचार है। अपने संविधान का निर्वचन करते समय हमें उन विनिश्चयों से मार्गदर्शन प्राप्त नहीं करना चाहिए जिनका हमारे संविधान में अन्तर्विष्ट समरूप उपबंधों से कोई संबंध नहीं है।

संविधान में कुछ विवादों का, अनुच्छेद 131 में अधिकथित रीति से भिन्न रीति में परिनिर्धारण करने का विशेष उपबंध किया गया है। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 143 भारत के राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय से उस समय परामर्श लेने की अध्यारोही शक्ति प्रदान करता है जबकि उसका यह मत हो कि प्रश्न इस प्रकार का है और ऐसे लोक महत्त्व का है कि ऐसा करना समीचीन है। उस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति को विधि या तथ्य के ऐसे किसी भी प्रश्न पर उच्च न्यायालय की राय अभिप्राप्त करने की शक्ति प्राप्त है जो कि उद्भूत हो गया है या जिसके उद्भूत होने की संभावना है और जो इस प्रकार का और ऐसे लोक महत्त्व का है कि राष्ट्रपति ऐसी राय अभिप्राप्त करना समीचीन समझते हैं। ऐसे मामले में, ऐसी सुनवाई करने के पश्चात् जैसी वह न्यायालय ठीक समझे, उसे उस प्रश्न पर अपनी राय राष्ट्रपति को भेजनी पड़ती है। अनुच्छेद का खण्ड (2) यह दर्शित करता है कि राष्ट्रपति की यह शक्ति अनुच्छेद 131 के परन्तुक का अध्यारोहण करती है।

अनुच्छेद 257 में, कुछ मामलों में राज्यों पर संघ का नियन्त्रण उपबन्धित है। उसी अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन, संघ की कार्यपालक शक्ति का विस्तार, ऐसे संचार साधनों के संनिर्माण और बनाए रखने के बारे में राज्य को निदेश देने तक के लिए भी है जिन्हें कि निदेश में राष्ट्रीय और सैनिक महत्त्व का घोषित किया गया हो। खण्ड (4) के अधीन, जहां कि ऐसे निदेश दिए गए हों और "जो लागत उपगत हुई हो, वह उस लागत से अधिक हो जो कि यदि ऐसा निदेश नहीं दिया गया होता तो राज्य के प्रसामान्य कर्त्तव्यों के निर्वहन में उपगत हुई होती", वहां भारत सरकार को चाहिए कि वह राज्य को ऐसी राशि संदत्त करे जिस पर सहमति हो जाए, या सहमति न होने की दशा में, जो राज्य द्वारा उपगत अतिरिक्त लागत के संबंध में भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ द्वारा अवधारित की जाए।

इसके अतिरिक्त, जब कि किसी अन्तर्राज्यीय नदी या नदी-घाटी के या में के पानी के उपयोग या वितरण या नियन्त्रण के संबंध में कोई विवाद या परिवाद है तो अनुच्छेद 262 का खण्ड (2) संसद् को विधि द्वारा यह उपबन्धित करने की शक्ति देता है कि ऐसे विवाद या परिवाद के संबंध में जैसा कि खण्ड (1) में निर्दिष्ट है, न तो उच्चतम न्यायालय और न अन्य कोई न्यायालय ही अपनी अधिकारिता का प्रयोग करेगा। ऐसी विधि न्यायालय की उस अधिकारिता का अपसारण कर देती है जैसी अधिकारिता प्रसामान्यतः अनुच्छेद 131 के अधीन लागू होगी। अनुच्छेद 290 में कतिपय खर्चों और

पैन्शनों के संबंध में जो उपबंध है वह अनुच्छेद 257(4) में अन्तर्विष्ट उपबंध के लगभग समरूप ही है और वह अनुच्छेद उसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ द्वारा अवधारणीय बनाता है।

इन विशेष उपबन्धों के अतिरिक्त, जो विवाद अनुच्छेद 131 की परिधि के अन्तर्गत आता है, उसका अवधारण उसी अनुच्छेद में उल्लिखित न्यायालय अर्थात् उच्चतम न्यायालय में ही किया जा सकता है : परन्तु यह तब जब कि ऐसे किसी विवाद में किसी प्राइवेट पक्षकार को, चाहे वह कोई नागरिक या कोई फर्म या कोई निगम हो, किसी राज्य के साथ या तो संयुक्ततः या अनुकल्पतः पक्षकार न बना लिया गया हो। ऐसा विवाद जिसमें ऐसा कोई प्राइवेट पक्षकार अन्तर्वलित है, इस न्यायालय से भिन्न किसी ऐसे न्यायालय के समक्ष लाया जाना चाहिए जिसे उस मामले में अधिकारिता प्राप्त हो।

बिहार राज्य के काउन्सेल की ओर से यह दलील दी गई कि जहां तक कि हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड का सम्बन्ध है, वह 'State' (राज्य) है और वे वाद जिनमें हिन्दुस्तान स्टील लि० के साथ भारत सरकार को पक्षकार बनाया गया है, संविधान के अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत समुचित रूप से फाइल किए गए हैं और वे इस न्यायालय द्वारा इसकी आरम्भिक अधिकारिता के अन्तर्गत विचारणीय हैं। **राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड बनाम मोहन लाल** ([3]) के मामले के प्रति निर्देश किया गया। उस मामले में कुछ व्यक्तियों के बीच प्रश्न उठा था जो कि राजस्थान राज्य के स्थाई कर्मचारी थे और जो बाद में राज्य विद्युत बोर्ड के नियन्त्रणाधीन कर दिए गए थे, और उसमें एक प्रश्न यह था कि क्या अपीलार्थी-बोर्ड को, अनुच्छेद 12 में परिभाषितानुसार, 'राज्य' माना जा सकता है। इस न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि बोर्ड अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'अन्य प्राधिकारी' ('other authority') था और इसलिए वह एक 'राज्य' (State) था जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन समुचित निदेश दिए जा सकते थे। यह ध्यान देने योग्य है कि अनुच्छेद 12 के अधीन, भारत के राज्य क्षेत्र में के या भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी भाग 3 के प्रयोजनों के लिए "States" (राज्य) हैं जिसमें कि संविधान में प्रतिष्ठापित मूल अधिकारों की परिभाषा और चर्चा की गई है। अनुच्छेद 36 के अधीन संविधान के भाग 4 में 'the State' (राज्य) पद का वही अर्थ है। इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया कि संविधान के भाग 3 और भाग 4 में दी गई 'State' (राज्य) पद की परिवर्धित परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 131 को क्यों लागू होगी तथा हमारी राय में हिन्दुस्तान स्टील लि० जैसी संस्था को संविधान के अनुच्छेद 131 के प्रयोजन के लिए "State" (राज्य) नहीं माना जा सकता।

परिणामतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि ये वाद संविधान के अनुच्छेद 131

([3]) (1967) 3 एस० सी० आर० 377.

1969(9) eILR(PAT) SC 1

के अधीन इस न्यायालय में नहीं चला जाए सकते और विवाद्यक संख्या 2 का उत्तर नकारात्मक ही होना चाहिए। न तो विवाद्यक संख्या 1 और न विवाद्यक संख्या 3 का ही कोई उत्तर देना आवश्यक है। हमारे इस विचार के अनुसार, ये वादपत्र उन न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के प्रयोजन के लिए लौटा दिए जाने चाहिए जिनको इन विवादों की बाबत अधिकारिता प्राप्त है। वादपत्रों पर उनके इस न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने की तारीख और यहां से उनके लौटाए जाने की तारीख पृष्ठांकित करके उन्हें समुचित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए लौटा दिया जाए। इन आवेदनों के खर्चे के बारे में हम कोई आदेश नहीं देते हैं।

वादपत्र लौटा दिए गए।

मुरारी/गो०